

ब्रिटेन की प्रीवी कौंसिल (Privy Council) जोकि ब्रिटिश उपनिवेशों तथा अधिराज्यों (British Colonies and Dominions) के न्यायालयों के लिए सर्वोच्च न्यायाधिकरण का कार्य करती है, स्वयं के विनिश्चयों से बाध्य नहीं है। यद्यपि सैद्धान्तिक दृष्टि से ब्रिटेन का हाउस ऑफ लार्ड्स तथा प्रीवी कौंसिल की न्यायिक समिति (Judicial Committee of Privy Council) दो अलग-अलग न्यायाधिकरण हैं तथा उनकी अधिकारिता भी भिन्न-भिन्न होती है, परन्तु इन दोनों न्यायाधिकरणों के सदस्य एक ही व्यक्ति होते हैं। यही कारण है कि प्रीवी कौंसिल के निर्णयों को भी हाउस ऑफ लार्ड्स के निर्णयों की भांति अत्यंत आदरपूर्ण स्थान प्राप्त है। इन दोनों न्यायाधिकरणों में एक अन्तर यह भी है कि प्रीवी कौंसिल की न्यायिक समिति सिद्धान्ततः एक परामर्शदात्री समिति है जो सम्राज्ञी को उपनिवेशों से आई अपीलों के बारे में परामर्श देती है। इसीलिए इस समिति के केवल बहुमत निर्णय का ही प्रकाशन किया जाता है तथा विसम्मत निर्णय प्रकाशित नहीं होते हैं।

इंग्लिश विधि के पूर्व-निर्णय के सिद्धान्त को अमेरिका तथा भारत<sup>18</sup> आदि देशों ने भी स्वीकार किया है क्योंकि इन देशों की विधि व्यवस्था ब्रिटिश न्याय-प्रणाली पर आधारित है।

### महाद्वीपीय न्याय-प्रणाली में पूर्व-निर्णय की उपेक्षा

उल्लेखनीय है कि यूरोप की महाद्वीपीय न्याय-व्यवस्था में न्यायिक पूर्व-निर्णयों को विशेष महत्व नहीं दिया गया है और न वे बन्धनकारी प्रभाव ही रखते हैं। इस प्रणाली के अन्तर्गत न्यायाधीश पूर्ववर्ती निर्णयों का अनुसरण करने के लिए बाध्य नहीं हैं। आंग्ल-विधि पद्धति तथा महाद्वीपीय विधि प्रणाली की पूर्व-निर्णय सम्बन्धी इस विषयता पर टिप्पणी करते हुए प्रोफेसर ग्रे (Prof. Gray) कहते हैं कि यह विधिशास्त्र की एक अद्भुत समस्या है। सम्भवतः इसका कारण यह है कि अंग्रेजों की तुलना में यूरोपीय महाद्वीप के लोग रोमन-विधि से अधिक प्रभावित हुए थे तथा रोमन-विधि के अन्तर्गत जस्टिनियन (Justinian) के मतानुसार प्रत्येक निर्णय विधि पर आधारित होना चाहिए न कि पूर्व-निर्णय पर।<sup>19</sup> इसका कारण यह है कि यदि कोई न्यायाधीश किसी पूर्ववर्ती निर्णय में अन्तर्विष्ट विधि के सिद्धान्त को उचित नहीं मानता है, तो वह उसे मानने के लिए बाध्य क्यों किया जाय? फ्रांस के सिविल कोड के अनुच्छेद 5 में यह स्पष्ट किया गया है कि फ्रांस की विधि में पूर्व-निर्णय बन्धनकारी प्रभाव नहीं रखते हैं।

### भारत में निर्णयानुसरण के सिद्धान्त की स्थिति

इंग्लैण्ड की भाँति भारत में भी निर्णयानुसरण के सिद्धान्त (*Doctrine of stare decisis*) को स्वीकार किया गया है। भारतीय विधि अधिकांशतः ब्रिटिश विधि पर आधारित होने के कारण भारत में भी विधि-निर्णयों के प्रकाशन और प्रसारण में समुचित प्रगति हुई है। भारत के विधि आयोग की सन् 1971 की रिपोर्ट के अनुसार सम्पूर्ण भारत में उस समय में कुल मिलाकर 53 निर्णय-पत्रिकाओं का प्रसारण हो रहा था जिनमें 15 सरकारी, 31 गैर-सरकारी तथा 7 विशिष्ट पत्रिकाएँ थीं।<sup>20</sup> इसमें ऑल इण्डिया रिपोर्ट्स, सुप्रीम कोर्ट जर्नल तथा विभिन्न राज्यों द्वारा प्रकाशित इण्डियन लॉ रिपोर्टर विशेष महत्वपूर्ण हैं। गत दशकों में हिन्दी भाषा में भी अनेक मानक विधि-निर्णय पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं जिनमें उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय निर्णय पत्रिका विशेष उल्लेखनीय हैं।

भारत की न्याय-व्यवस्था में न्यायालयों की एक क्रमबद्ध शृंखला है जिनमें उच्चतम न्यायालय का सर्वोच्च स्थान है। उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) के अधीनस्थ अनेक उच्च न्यायालय (High Court) कार्यरत हैं। प्रत्येक उच्च न्यायालय के अधीन जिला न्यायालय तथा अधीनस्थ न्यायालय हैं। उच्चतम न्यायालय का निर्णय सभी भारतीय न्यायालयों पर बन्धनकारी प्रभाव रखता है।<sup>21</sup> उच्च न्यायालय

18. अमेरिका का सुप्रीम कोर्ट तथा भारत का उच्चतम न्यायालय स्वयं के निर्णय से बाध्य नहीं हैं, अर्थात् यदि इनके द्वारा दिया गया कोई पूर्ववर्ती निर्णय असंगत हो, तो वे उसे पलट सकते हैं देखें, *गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य*, ए० आई० आर० 1967 सु० को० 1643.

19. ग्रे : नेचर एण्ड सोर्सज ऑफ ला, पृ० 212.

20. डॉ० : परांजपे, एन० वी० : भारत का विधिक एवं सांविधिक इतिहास (पंचम संस्करण, 1992), पृ० 370-378.

21. भारत का संविधान, अनुच्छेद 141.

के निर्णय उसके अधीनस्थ न्यायालयों के प्रति बन्धनकारी होते हैं<sup>22</sup> किन्तु अन्य उच्च न्यायालयों पर वे बन्धनकारी नहीं होते हैं। एक उच्च न्यायालय (High Court) किसी अन्य उच्च न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय को मानने से इन्कार कर सकता है। क्योंकि ऐसा पूर्व-निर्णय केवल अनुभवी महत्व (Persuasive value) रखता है। किसी न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ (Full Bench) के निर्णय उस न्यायालय की खण्डपीठ (Division Bench) पर बन्धनकारी होंगे। इसी प्रकार खण्डपीठ के निर्णय उसी न्यायालय के एक न्यायाधीश की एकल न्याय-पीठ (Single Bench) पर बन्धनकारी होते हैं।<sup>23</sup>

सन् 1949 तक इंग्लैण्ड की प्रिवी कौंसिल (Privy Council) को भारत के न्यायालयों में सर्वश्रेष्ठ न्यायालय के रूप में मान्यता थी। उस समय तक भारत में उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) की स्थापना नहीं हुई थी। अतः भारत के उच्च न्यायालयों (High Courts) से अपील प्रिवी कौंसिल को होती थी। प्रिवी कौंसिल के निर्णय भारत के सभी न्यायालयों पर बन्धनकारी थे। परन्तु सन् 1949 से भारतीय न्यायालयों पर से प्रिवी कौंसिल की अधिकारिता समाप्त हो गई। उल्लेखनीय है कि भारत का उच्चतम न्यायालय स्वयं के निर्णय से बाध्य नहीं है।<sup>24</sup> इसी प्रकार यह न्यायालय प्रिवी कौंसिल के निर्णय को मान्य करने के लिए बाध्य नहीं है,<sup>25</sup> अर्थात् यदि वह चाहे, तो प्रिवी कौंसिल के निर्णय (ruling) को अमान्य कर सकता है। भारत का उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) इंग्लिश वादों के निष्कर्षों (dicta) को मानने के लिए बाध्य नहीं है।<sup>26</sup> उल्लेखनीय है कि पूर्व-निर्णय के रूप में अप्रतिवेदित (unreported) निर्णयों का वही महत्व है जो कि प्रतिवेदित निर्णयों का है।

भारतीय स्वतंत्रता के पहले पूर्व-निर्णयों के बन्धनकारी प्रभाव के सिद्धान्त को भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 212 के अन्तर्गत मान्यता प्रदान की गई थी। इस धारा के अनुसार प्रिवी कौंसिल तथा संघीय न्यायालय (Federal Court) के निर्णय ब्रिटिश भारत के सभी न्यायालयों के लिए बन्धनकारी थे।

भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात् भारत के संविधान के अनुच्छेद 141 के अन्तर्गत पूर्व-निर्णयों की बाध्यता के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया था। इस धारा के अनुसार भारत के उच्चतम न्यायालय द्वारा दिये गए निर्णय सभी न्यायालयों के लिए बन्धनकारी प्रभाव रखते हैं तथा न्यायालय स्वयं भी उनका अनुसरण करने के लिए बाध्य था। परन्तु सन् 1955 के बंगाल इम्यूनिटी कंपनी बनाम बिहार राज्य के निर्णय के बाद उच्चतम न्यायालय स्वयं के निर्णय से बाध्य नहीं रहा और अब न्यायोचित होने पर वह अपने पूर्व-निर्णय को पलट सकता है। ए० आर० अन्तुले बनाम आर० एस० नाईक<sup>27</sup> के वाद में भी उच्चतम न्यायालय ने अपने पूर्व-निर्णय को नजर-अन्दाज करते हुए अवलोकन किया कि आवश्यक होने पर वह अपने पूर्व-निर्णय से हटकर निर्णय दे सकता है।

सोमवंती बनाम पंजाब राज्य<sup>28</sup> के विनिश्चय में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया कि पूर्व-निर्णय का केवल निर्णयानुसार (Ratio decidendi) ही बन्धनकारी प्रभाव रखता है न कि संपूर्ण निर्णय। अतः उच्चतम न्यायालय के निर्णय में दी गई इतरोक्ति (obiter dicta) निचले न्यायालयों के लिए बन्धनकारी प्रभाव नहीं रखती है। परन्तु उच्चतम न्यायालय ने श्रवण सिंह लांबा बनाम भारत संघ<sup>29</sup> के वाद में स्पष्ट किया है कि उसके द्वारा दिये गए निर्णय की इतरोक्ति भी सभी निचली न्यायालयों के लिए बन्धनकारी प्रभाव रखती है और वे उसका अनुसरण करने के लिए बाध्य हैं।

22. रेक्स बनाम रामदयाल, ए० आई० आर० 1950, इलाहाबाद 134.

23. तरपोंडा बनाम मृत्युंजय, ए० आई० आर० 1958 कलकत्ता 314.

24. बंगाल इम्यूनिटी कंपनी लि० बनाम स्टेट ऑफ बिहार, ए० आई० आर० 1955, सु० को० 661; गोलकनाथ, केशवानन्द भारती तथा मिनर्वा मिल आदि के वाद।

25. श्रीनिवास बनाम नारायण, ए० आई० आर० 1954 सु० को० 375.

26. मणीपुर प्रशासन बनाम बीरा सिंह, ए० आई० आर० 1965 सु० को० 87.

27. ए० आई० आर० 1988 सु० को० 151.

28. ए० आई० आर० 1963 सु० को० 151.

29. ए० आई० आर० 1995 सु० को० 1729.

उल्लेखनीय है कि सुप्रीम कोर्ट एडवोकेट्स ऑन रिकार्ड एसोसिएशन बनाम भारत संघ<sup>30</sup> के वाद में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया कि निर्णयाधार (Ratio decidendi) का नियम अनम्य नहीं है तथा सांविधानिक मामलों में उसकी सुसंगतता सीमित होती है। इसमें संदेह नहीं कि इस नियम से निर्णीत वादों में समानता और एकरूपता आती है, तथापि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा अपनी अन्तर्निहित शक्ति (Inherent power) का प्रयोग करते समय इस बात पर विचार किया जाना चाहिए कि क्या अपने पूर्व-निर्णय को पलटना लोकहित या किसी अन्य कारण से उचित होगा?

कृष्णा स्वामी बनाम भारत संघ<sup>31</sup> के वाद में उच्चतम न्यायालय ने निर्णयाधार के महत्व एवं उसकी सीमाओं की व्याख्या करते हुए अभिनिर्धारित किया कि अनु० 141 के अनुसार संविधान के निर्वचन के संबंध में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिये गए विनिश्चय में अंतिमता (finality) होती है और वह पूर्व-निर्णय के रूप में प्रयुक्त किये जाने के कारण उसमें स्थायित्व, निश्चितता एवं निरंतरता होना परम आवश्यक है। उच्चतम न्यायालय द्वारा स्वयं के पूर्व-निर्णय का अनुसरण किये जाने में ही बुद्धिमत्ता है जब तक कि उससे हटने के लिए कोई युक्तियुक्त कारण न हो या वृहद लोकहित में ऐसा करना अत्यावश्यक न हो।

उच्चतम न्यायालय ने वचनसिंह बनाम पंजाब राज्य<sup>32</sup> के फैसले में अभिनिर्धारित किया कि निर्णयाधार के नियम का आँख मूंदकर यंत्रवत अनुसरण किया जाए, तो यह विधि का विकास अवरुद्ध कर उसे बौना बना देगा और इससे समाज की आवश्यकताओं के अनुसार स्वयं को ढालने की उसकी क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

### इतरोक्ति (obiter dicta)

इतरोक्ति (obiter dicta) निर्णयाधार से भिन्न है। विधि की ऐसी घोषणाएँ जो निर्णयाधार का अंश नहीं हैं, इतरोक्ति कहलाती हैं और ये बन्धनकारी प्रभाव नहीं रखती हैं। न्यायिक निर्णय के आधारभूत विधि-सिद्धान्त को निर्णयाधार कहते हैं जिसे विशिष्ट मामले में लागू किया जाता है। जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, ये सिद्धान्त प्राधिकारिक तथा बन्धनकारी (authoritative and binding) प्रभाव रखते हैं। न्यायालय जब अपने तर्क के प्रवाह में किसी ऐसे सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं जिसे वे अपने किसी निर्णय-विशेष का आधार नहीं मानते, तो उनके द्वारा किये गये ऐसे प्रतिपादन को इतरोक्ति (obiter dicta) कहते हैं। इतरोक्ति से तात्पर्य उन बातों से है जो आनुषंगिक रूप में कही जाती हैं। इनका प्रभाव केवल प्रत्ययकारी होता है तथा वे अनुनयात्मक (persuasive) होती हैं।

यदि कोई न्यायाधीश किसी वाद में दिये गये अपने निर्णय को एक काल्पनिक दृष्टान्त द्वारा समझाने का प्रयास करता है, तो उस काल्पनिक दृष्टान्त के प्रति लागू किया गया विधि का सिद्धान्त वास्तविक परिस्थितियों के संबंध में न होते हुए भी इतरोक्ति कथन (obiter dicta) का प्रभाव रखेगा क्योंकि बन्धनकारी न होते हुए भी वह समान वादों में न्यायाधीशों के लिए मार्गदर्शक का कार्य कर सकता है।

डॉ० ऐलन के मतानुसार इतरोक्ति अनेक बार उद्धृत होने के पश्चात् बन्धनकारी प्रभाव रखने लगती है। उनका कहना है कि इतरोक्ति तथा निर्णयाधार में अन्तर स्पष्ट करना कठिन है। प्रत्येक निर्णय न्यायाधीश के व्यक्तिगत विचारों से प्रभावित होता है। अतः इन दोनों का भेद प्रत्येक निर्णय में भिन्न-भिन्न कारणों पर निर्भर करता है। सामान्यतः किसी व्यक्ति को किसी निर्णय में जो बात रुचिकर लगती है, वह उसके लिए सुसंगत होती है और जो उसे रुचिकर नहीं लगती वह उसकी दृष्टि में असंगत होती है। फलतः ऐलन के अनुसार निर्णय-रूपी दूध से विनिश्चय-आधार रूपी मक्खन निकालने के लिए निश्चित मापदण्ड नहीं है, केवल कुछ निर्देशात्मक सिद्धान्त हो सकते हैं जिनका न्यूनाधिक पालन किया जा सकता है।

पैटन के अनुसार इतरोक्ति से आशय न्यायाधीश द्वारा अपने निर्णय में विधि के बारे में व्यक्त वे विचार हैं जो निर्णय में उत्पन्न समाधान के लिए किसी प्रश्न या मुद्दे से संबंधित बहस का भाग नहीं हैं।

30. ए० आई० आर० 1994 सु० को० 268.

31. ए० आई० आर० 1993 सु० को० 1407.

32. ए० आई० आर० 1980 सु० को० 898.

एस० आर० बोम्मई बनाम भारत संघ<sup>33</sup> के वाद में न्यायपीठ के विभिन्न सदस्यों द्वारा संविधान के मूल ढाँचे की विषयवस्तु के बारे में किये गये विभिन्न कथनों को इतरोक्ति माना गया है। इस वाद में नौ सदस्यीय न्यायपीठ ने सर्वसम्मति से धर्म निरपेक्षता को मूल ढाँचे का भाग माना लेकिन न्यायमूर्ति अहमदी ने अनुच्छेद 15, 16 एवं 25 में दिये गये मूल अधिकारों को मूल ढाँचे के रूप में सम्मिलित किया। इसी तरह न्यायमूर्ति सावंत और कुलदीप सिंह ने सामाजिक बहुलवाद को मूल ढाँचे का अंग निरूपित किया तथा न्यायमूर्ति रामास्वामी ने समाजवाद, सामाजिक न्याय, धार्मिक सहिष्णुता एवं बंधुत्व को संविधान के मूल ढाँचे का भाग माना। चूंकि ये प्रश्न इस वाद में उठे ही नहीं थे, अतः इन्हें इतरोक्ति माना गया है।

निर्णयाधार (*ratio decidendi*) तथा इतरोक्ति (*obiter dicta*) में भेद समझने के लिए आर० बनाम फ्रेंकलिन<sup>34</sup> के वाद को उद्धृत करना उपयुक्त होगा।

इस वाद में मृतक ट्रेन्चार्ड (Trenchard) जुलाई, सन् 1882 को ब्राइटन (Brighton) नामक स्थान में समुद्र-स्नान कर रहा था। अभियुक्त फ्रेंकलिन ने उस समुद्र के किनारे पर स्थित उपहारगृह से एक बड़ी-सी पेट्टी उठाकर समुद्र में फेंक दी जो समुद्र में तैरते हुए ट्रेन्चार्ड को जा लगी, जिससे उसकी मृत्यु हो गई। फ्रेंकलिन को मानव-वध (manslaughter) के अभियोग में न्यायाधीश फील्ड (Field J) के न्यायालय में प्रस्तुत किया गया। अभियुक्त को न्यायाधीश द्वारा दो मास के कारावास से दंडित किया गया। न्यायमूर्ति फील्ड के अनुसार इस वाद का निर्णयाधार (*ratio decidendi*) यह था कि—

(1) यदि कोई व्यक्ति किसी अपकृत्य को करते समय या करने के परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति की मृत्यु के लिए कारणीभूत होता है, तो वह केवल इस कारणमात्र से कि उससे किसी की मृत्यु हो गई है, मानव-वध के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।

(2) वह व्यक्ति जो घोर असावधानी (gross negligence) के कारण किसी की मृत्यु कारित करता है, मानव-वध के लिए दोषी होगा, अर्थात् अपराधिक विधि में अपराध-कृत्य के साथ अपकृत्य घटित हुआ या नहीं, यह पूर्णतः असंगत (irrelevant) तथ्य है। इस वाद में इतरोक्ति (*obiter dicta*) के रूप में न्यायाधीश ने व्यक्त किया कि यदि अभियोजन-पक्ष (prosecution) द्वारा अभियुक्त के विरुद्ध उठाये गये सभी तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध हो भी जाए कि अभियुक्त ने आरोपित अपकृत्य (tort) किया है, फिर भी वह तब तक मानव-वध के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता जब तक कि जूरी द्वारा इस आशय का अभिमत व्यक्त न किया जाये।

### पूर्व-निर्णयों के विभिन्न प्रकार (Defferent Kinds of Precedents)

सामण्ड के अनुसार न्यायिक पूर्व-निर्णयों को विभिन्न दृष्टिकोणों से अलग-अलग वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।<sup>35</sup> प्रभाव की दृष्टि से पूर्व-निर्णय दो प्रकार के होते हैं—(1) प्राधिकारिक (Authoritative) तथा (2) अनुनयी (Persuasive)।

प्राधिकारिक पूर्व-निर्णय या तो 'निरपेक्ष' (absolute) होते हैं या 'सशर्त' (Conditional)। प्राधिकारिक-पूर्व-निर्णय को प्रामाणिक पूर्व निर्णय भी कहते हैं। ये ऐसे पूर्व-निर्णय होते हैं जिनका अनुसरण करना न्यायाधीशों के लिए अनिवार्य होता है भले ही वे उससे सहमत हों या न हों। दूसरे शब्दों में प्राधिकारिक पूर्व-निर्णय के बन्धनकारी प्रभाव के कारण न्यायाधीश के स्वविवेक की कोई गुंजाइश नहीं रहती है। उदाहरण के लिए, भारत में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय प्राधिकारिक पूर्व-निर्णय होते हैं। इस प्रकार के निर्णय विधि के वैधानिक स्रोत (legal sources of law) के रूप में मान्य हैं।

अनुनयी पूर्व-निर्णय ऐसे न्यायिक निर्णय होते हैं जिनका अनुसरण करने के लिए न्यायाधीश बाध्य नहीं हैं। ऐसे विनिश्चयों पर न्यायाधीश विचार अवश्य करते हैं तथा उन्हें उचित महत्व भी देते हैं, परन्तु उनका

33. (1994) 3 एस० सी० सी० 1 (78, 118, 205)

34. *R. vs. Franklin* (1883) 15 Cox, 163.

35. सामण्ड : ज्यूरिसप्रूडेन्स (12वाँ संस्करण), पृ० 165.